विचारधारा के बारे में

I

विचारधारा का महत्व

> "…. *विशेष रूप से नेताओं का यह कर्त्तव्य होगा कि वे सभी सैद्धान्तिक प्रश्नों की निरंतर स्पष्टतर समझ हासिल करें, पुराने विश्व दृष्टिकोण से उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त परम्परागत शब्दजाल के प्रभाव से अपने को अधिकाधिक मुक्त करें और इस बात का बराबर ध्यान रखें कि चूंकि समाजवाद एक विज्ञान बन गया है इसलिए वह यह अपेक्षा करता है कि उसका विज्ञान के रूप में अनुशीलन किया जाये, अर्थात् यह कि उसका अध्ययन किया जाये। इस प्रकार से प्राप्त अधिकाधिक स्पष्ट होती जाती हुयी समझ को आम मजदूरों के बीच और अधिक उत्साह और लगन से फैलाना और पार्टी तथा ट्रेड-यूनियन, दोनों के ही संगठन को अधिकाधिक दृढ़ रूप से संहत करना – यह होगा हमारा काम।…"* (फ्रेडरिक एंगेल्स,'जर्मनी में किसान युद्ध की भूमिका', संकलित रचनाएं तीन खण्डों में, प्रगति प्रकाशन, मास्को, 1977, खण्ड-2, भाग-1, पृष्ठ-227.228)

हम लोग मार्क्सवादी हैं। मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ विचारधारा हमारी विचारधारा है। लेकिन दुर्भाग्य यह है कि हममें से ज्यादातर लोग मार्क्सवादी नहीं हैं।

क्या मतलब है इसका?

इसका मतलब यह है कि हम औपचारिक तौर पर मार्क्सवाद को अपनी विचारधारा घोषित करते हैं। कोई हमारी औपचारिक घोषणा पर जाये तो हमें मार्क्सवादी कहेगा। लेकिन सही मायने में हममें से ज्यादातर लोग मार्क्सवादी नहीं हैं। वे उसके सारतत्व से वंचित हैं। और यह तथ्य हमारी आज की ज्यादातर समस्याओं के मूल में है।

कम्युनिस्ट क्रांतिकारी खेमे के ज्यादातर लोगों के लिए मार्क्सवादी विचारधारा का सबसे अहम हिस्सा – द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और ऐतिहासिक भौतिकवाद, खासकर पहला – उस पटके की तरह है जिसे वे क्रांति के लिए निकलते समय माथे पर बांध लेते हैं। या फिर वह उस कोट की तरह है जिसे वे जरूरत-बा-जरूरत पहन लेते हैं। इस तरह उनके लिए क्रांति का सिद्धान्त व व्यवहार तथा मार्क्सवादी विचारधारा, दो अलग-अलग चीजें होती हैं। वे इस कदर अलग होती हैं कि दूसरी पहले के लिए प्रमाणपत्र का काम करती है।

जैसा कि हमने पहले कहा है, सही मायने में मार्क्सवादी न होना हमारी ज्यादातर समस्याओं के मूल में है। चूंकि मार्क्सवाद केवल माथे के पटके की तरह काम करता है इसीलिए हर किसी

का अपना क्रांति का सिद्धान्त होता है, उसकी अपनी रणनीति और रणकौशल होते हैं। यहां तक कि जब वे मिलती-जुलती बात कर रहे होते हैं तब भी उनका मतलब अलग-अलग होता है। मार्क्सवाद के शास्त्रीय ग्रंथों में कही गयी बात के वे अलग-अलग अर्थ लगा रहे होते हैं या एक ही बात के लिए के लिए वे अपने मन मुताबिक अलग-अलग संदर्भ तलाश रहे होते हैं, जोर को घटा या बढ़ा रहे होते हैं।

मार्क्सवाद के संस्थापकों ने एकाधिक बार यह कहा है कि उनका सिद्धान्त एक पथ प्रदर्शक सिद्धान्त है, कोई बना बनाया जड़ सूत्र नहीं। लेकिन ज्यादातर मार्क्सवादियों को इतने से चैन नहीं है। वे मार्क्सवाद को जड़ सूत्र के रूप में ही लेते हैं। गौतम बुद्ध के अनुयाइयों को उनकी नास्तिकता से चैन नहीं था। उन्होंने गौतम बुद्ध को ही भगवान घोषित कर दिया। ईसा मसीह के अनुयाइयों को दरिद्र नारायण से चैन नहीं था। उन्होंने विशाल वैभवशाली चर्च साम्राज्य की स्थापना की। इसी तरह मार्क्सवाद के संस्थापकों के अनुयायी भी उनकी बात मानने को तैयार नहीं हैं।

फिर क्या है मार्क्सवाद का सारतत्व? सही माने में मार्क्सवादी होने का मतलब क्या है

मार्क्सवाद का सार तत्व है मार्क्सवादी विश्व दृष्टिकोण जिसे सर्वहारा दृष्टिकोण भी कहते हैं। मार्क्सवादी विश्व दृष्टिकोण मार्क्सवादी विचारधारा का मूल, उसका सबसे अहम हिस्सा है। मार्क्सवादी विश्व दृष्टिकोण है – द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद। केवल इस दृष्टिकोण को ग्रहण करके,इसको आत्मसात करके और इसके विरोधी दृष्टिकोणों से स्वयं को मुक्त करके ही कोई सही मायने में मार्क्सवादी हो सकता है।

लेकिन मार्क्सवादी दृष्टिकोण अपनाने का मतलब क्या होता है? अक्सर ही यह पाया जाता है कि अपने को मार्क्सवादी कहने वाले लोग द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के सूत्रों को याद कर लेते हैं। जरूरत पड़ने पर वे इन सूत्रों के सहारे द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद पर लम्बा भाषण दे सकते हैं, वे इसकी व्याख्या भी कर सकते हैं, इसके समर्थन में कई सारे उदाहरण भी दे सकते हैं लेकिन उनका खुद का दृष्टिकोण द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी नहीं होता। पहला मौका पाते ही वे अधिभूतवादी और भाववादी साबित हो जाते हैं। वैसे इससे भी ज्यादा गैर द्वन्द्वात्मक और भाववादी क्या होगा कि कोई द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद को ही सूत्र रूप में रट ले।

सही मायने में मार्क्सवादी विश्व दृष्टिकोण अपनाने का मतलब है भौतिक जगत को – प्रकृति और समाज को द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी नजरिये से देखना और ग्रहण करना। यानी प्रकृति और समाज की हर परिघटना को इसी नजरिये से देखना और ग्रहण करना। इस रूप में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद कोई रटा जाने वाला सूत्र नहीं रह जाता बल्कि उसकी चेतना का हिस्सा हो जाता है।

और यही सबसे मुश्किल चीज है। वर्गीय समाज आम तौर पर और पूंजीवादी समाज खास तौर पर अधिभूतवादी और भाववादी विश्व दृष्टिकोण को स्थापित करता है। इस समाज में लोगों की चेतना इसी विश्व दृष्टिकोण का शिकार होती है। ऐसे में पूंजीवादी समाज में रहते हुए इस विश्व दृष्टिकोण को त्याग पाना काफी मुश्किल होता है। इसीलिए ऐसा होता है कि कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन में शामिल हो जाने के लम्बे समय बाद भी क्रांतिकारियों का विश्व दृष्टिकोण गैर-मार्क्सवादी बना रहता है। ये लोग क्रांति के कार्यक्रम, रणनीति और रणकौशल को स्वीकार कर क्रांति कर्म में लगे रहते हैं जबकि उनका विश्व दृष्टिकोण पुराना, गैर-मार्क्सवादी बना रहता है। समस्या तब और गहरी हो जाती है जब क्रांति की मंजिल जनवादी हो या कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों ने क्रांति की मंजिल

को जनवादी मान रखा हो। तब गैर सर्वहारा दृष्टिकोण से मुक्ति का प्रश्न एक अमूर्त प्रश्न,''विचारधारात्मक'' कार्यवाही बन जाता है।

यहां यह बात अत्यंत महत्वपूर्ण है कि द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी दृष्टिकोण सर्वहारा का दृष्टिकोण है। सर्वहारा समाज में वर्ग अवस्थिति के कारण ही इस दृष्टिकोण को अपनाने के लिए सबसे अनुकूल होता है। पूंजीपति वर्ग के खिलाफ सर्वहारा का वर्ग संघर्ष वह भौतिक जमीन मुहैया करता है जिसमें इस दृष्टिकोण को अपनाना आसान हो जाता है। व्यक्ति अपने पुराने दृष्टिकोण को छोड़ कर नये दृष्टिकोण को अपना लेता है।

इसीलिए जब समाज में सर्वहारा वर्ग की प्रधानता नहीं होती या क्रांति की मंजिल जनवादी होती है तब सहज ही गैर सर्वहारा दृष्टिकोण के हावी होने की जमीन सुलभ हो जाती है। तब कम्युनिस्ट क्रांतिकारी भी उस पुराने विश्व दृष्टिकोण से अपने को मुक्त नहीं कर पाते जो उन्हें पूंजीवाद से विरासत में, जन्म के साथ घुट्टी के रूप में मिला होता है।

और यह स्थिति कम्युनिस्टों के लिए खतरनाक साबित होती है। घोषित तौर पर वे कम्युनिस्ट होते हैं जबकि वास्तव में उनका विश्व दृष्टिकोण गैर-सर्वहारा होता है। इसके चलते किसी भी समस्या को देखने का उनका दृष्टिकोण गैर-सर्वहारा होता है और फलस्वरूप समस्या का समाधन भी गैर-सर्वहारा होता है।

यहां से हम समस्या के केन्द्र बिन्दु पर आते हैं। आज कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन में जो टूट-फूट और बिखराव है, आंदोलन की जो अत्यन्त धीमी प्रगति है तथा सही सर्वहारा विचारधारा से विचलन और भटकाव है, इन सबकी भौतिक जमीन है। लेकिन जहां तक इन सबके पीछे वैचारिक कारण मौजूद है, वहां समस्या का केन्द्र बिन्दु गैर सर्वहारा विश्व दृष्टिकोण है।

कम्युनिस्टों का उद्देश्य होता है समाज विशेष में राज्य सत्ता पर कब्जा, पुरानी राज्य मशीनरी को ध्वस्त कर नयी राज्य मशीनरी स्थापित करना, सर्वहारा अधिनायकत्व के तहत समाजवाद का निर्माण करना, समाजवादी समाज में वर्ग संघर्ष को सही तरह से संचालित करते हुये समाज को कम्युनिज्म की ओर ले जाना। इन सबके लिए कम्युनिस्टों को अपनी दूरगामी और फौरी नीति, रणनीति और रणकौशल तय करने होते हैं। इन सबको करने के लिए समाज के सही विश्लेषण की आवश्यकता होती है। और सही विश्लेषण सही विश्व दृष्टिकोण की मांग करता है। यदि समाज को गलत विश्व दृष्टिकोण से, गैर सर्वहारा दृष्टिकोण से देखा जायेगा तो नतीजे भी गैर सर्वहारा निकलेंगे।

मार्क्सवाद के संस्थापकों मार्क्स-एंगेल्स से लेकर लेनिन-स्टालिन और माओ तक ने अपने और पहले के समाजों का अध्ययन करके कुछ आम निष्कर्ष निकाले हैं। इनमें ऐतिहासिक भौतिकवाद सर्वोपरि है। मानव समाज के बारे में ये आम निष्कर्ष भी मार्क्सवादी विचारधारा का हिस्सा हैं। कम्युनिस्ट आम तौर पर इन निष्कर्षो को बुनियादी प्रस्थापनाओं की तरह स्वीकार करते हैं और यह ठीक ही है।

लेकिन यदि कम्युनिस्ट क्रांति कर कम्युनिस्ट समाज स्थापित करना चाहते हैं तो सर्वहारा का शत्रु वर्ग यानि पूंजीपति वर्ग भी चुप नहीं बैठा है। वह अपने स्वर्ग को हर कीमत पर बचाना चाहता है। इसके लिए वह दो काम करता है-एक वैचारिक तथा दूसरा भौतिक।

वैचारिक तौर पर पूंजीपति वर्ग लगातार मार्क्सवाद पर हमले करता है, कभी प्रत्यक्ष तथा कभी परोक्ष, और यह साबित करने का प्रयास करता है कि मार्क्सवादी विश्व दृष्टिकोण और मार्क्सवाद की सभी बुनियादी प्रस्थापनाएं गलत हैं। पूंजीपति वर्ग की सेवा में हजारों-लाखों बुद्धिजीवी जुटे रहते हैं जो इस काम को अंजाम देते हैं। इनमें से कुछ तो यह काम अपनी वर्गीय पक्षधरता के कारण करते हैं और कुछ सीधे जरखरीद गुलामों की तरह। इस तरह हजारों बार मार्क्सवाद को गलत साबित करने के बाद भी एक बार फिर इसे गलत साबित करने का प्रयास किया जाता है। यह आगे भी इसी शिद्दत के साथ जारी रहेगा क्योंकि यहां मामला किसी बौद्धिक जुगाली या कसरत का नहीं बल्कि एक समूची समाज व्यवस्था को बचाने का है, ऐसी समाज व्यवस्था जिस पर उनका पूरा अस्तित्व टिका है।

मार्क्सवाद पर वैचारिक आक्रमण मात्र से पूंजीपति वर्ग संतुष्ट नहीं हो जाता। वह कुछ और भी करता है और वह ज्यादा महत्वपूर्ण होता है। वह क्रांतिकारी आंदोलन से अपने को बचाने के लिए उपाय करता है। यदि कम्युनिस्ट पूंजीवादी व्यवस्था को ध्वस्त करने के लिए रणनीति और रणकौशल तय करते हैं तो पूंजीपति वर्ग भी अपनी व्यवस्था में परिवर्तन कर कम्युनिस्टों की नीति को नाकाम करने का प्रयास करता है। वैसे भी पूंजीवादी व्यवस्था उथल-पुथल भरी सदा परिवर्तनशील व्यवस्था है। इसीलिए कम्युनिस्टों की रणनीति और रणकौशल वक्त के साथ पुराने पड़ जाते हैं और उन्हें फिर से गढ़ने की जरूरत पैदा होती है। निरंतर परिवर्तनशील व्यवस्था को रूढ़ अस्त्रों से नहीं ध्वस्त किया जा सकता।

उपरोक्त दोनों वैचारिक और भौतिक चीजें कम्युनिस्टों के लिए कठिन चुनौती पैदा करती हैं। एक तो उनकी बुनियादी प्रस्थापनाओं के बारे में पूंजीपति वर्ग लगातार संदेह पैदा करता रहता है, दूसरे उनकी अपनी नीतियां लगातार पुरानी पड़ती और इसीलिए निष्प्रभावी होती रहती हैं। इसीलिए यदि सर्वहारा विश्व दृष्टिकोण पर पांव मजबूती से नहीं जमे होते हैं तो भारी मुसीबत पैदा हो जाती है। न केवल कम्युनिस्ट बदलते वक्त के हिसाब से सही रणनीति व रणकौशल नहीं तय कर पाते बल्कि वे अपनी विचारधारा पर ही संदेह करने लगते हैं। वे ढेरों विभ्रमों और भटकाव के शिकार हो जाते हैं। यह सारा कुछ अंततः अवसरवाद और संशोधनवाद तक जा पहुंचता है। क्रांति से पलायन, सुधारवाद, बुर्जुआ व्यवस्था में समाहित हो जाना तथा टूट-फूट-बिखराव इसकी अनिवार्य परिणतियां हैं।

यह आम तौर पर कहा जाता है कि कम्युनिस्टों के बीच एकता के लिए विचारधारात्मक एकता सर्वोपरि है। लेकिन बात इससे बड़ी है। बात विचारधारात्मक एकता की नहीं है, बात सही विचारधारा पर एकता की है। यदि जिस विचारधारा पर एकता हुयी है वह सही मार्क्सवादी विचारधारा नहीं है, वह सर्वहारा दृष्टिकोण पर आधरित नहीं है तो वह तुरंत ही टूट-फूट को जन्म देगी क्योंकि एक ही समस्या के समाधन के लिए विभिन्न लोग विभिन्न नतीजों तक पहुंचेंगे। यदि हद दर्जे का अवसरवाद कर वे अपनी एकता बचा भी ले जाते हैं तो यह एकता किसी काम की नहीं होगी क्योंकि इससे क्रांति नहीं होगी।

उपरोक्त से स्पष्ट है कि विचारधारा कम्युनिस्टों का 'साइड बिजनेस' नहीं बल्कि 'मेन बिजनेस' है। जैसा कि एंगेल्स ने कहा है कि रोजमर्रा के संघर्ष, राजनीतिक संघर्ष के साथ यह कम्युनिस्टों का तीसरा सबसे महत्वपूर्ण कार्यभार है। यदि कम्युनिस्ट सर्वहारा विश्व दृष्टिकोण नहीं अपनाते, वे मार्क्सवादी विचारधारा में परिपक्वता हासिल नहीं करते तो वे न तो अपने सामने पेश

व्यवहारिक समस्याओं को हल कर पायेंगे और न ही अपनी एकता बनाए रख पायेंगे। इससे भी आगे यह कि मार्क्सवादी विचारधारा से भटक कर वे अवसरवाद-संशोधनवाद के दलदल में डूब जायेंगे। वे या तो क्रांति का दामन छोड़ जायेंगे या फिर मजदूर आंदोलन में पूंजीपति वर्ग के एजेन्ट बन जायेंगे।

कम्युनिस्ट क्रांतिकारी शिविर में मार्क्सवादी विश्व दृष्टिकोण को अपना विश्व दृष्टिकोण बनाने के बदले किस तरह इसे माथे के पटके की तरह इस्तेमाल किया जा रहा है, इसका सबसे बड़ा प्रमाण तो यह है कि आज किसी भी नयी परिघटना का मार्क्सवादी विश्लेषण पेश नहीं किया जा रहा है। खेमे के नेता तक विश्लेषण के लिए मार्क्सवादी बुद्धिजीवियों पर बुरी तरह निर्भर हैं। खुद वे पुराने सूत्र दुहरा कर संतुष्ट हो जाते हैं। इसका दूसरा पहलू यह है कि आये दिन खेमे में ऐसे लोग पैदा हो रहे हैं जो मार्क्सवाद की बुनियादी प्रस्थापनाओं पर सवाल उठाते हैं और धीमे-धीमे खेमे से बाहर हो जाते हैं। जिसे उन्होंने कभी आत्मसात नहीं किया होता है, उसे वे औपचारिक तौर पर भी त्याग देते हैं। हां, अपने पीछे वे काफी गंदी हवा छोड़ जाते हैं।

II

विज्ञान और ''विचारधारा''

''.... हर विचारधारा जन्म लेने के बाद उपलब्ध विचार सामग्री के साथ सम्बद्ध रूप में विकसित होती है और इस सामग्री का और भी विकास करती है। यदि वह ऐसा नहीं करती, तो वह विचारधारा – अर्थात् स्वतंत्र रूप में विकसित होते हुये और अपने ही नियमों के अधीन स्वतंत्र सत्ता के रूप में स्थित, विचारों का धन्धा – नहीं रह जाती। यह बात कि अंततोगत्वा ऐसे लोगों के जीवन की भौतिक अवस्थाएं, जिनके मस्तिष्क में यह चिन्तन प्रक्रिया चलती रहती है, इस प्रक्रिया का क्रम निर्धारित करती हैं, अनिवार्यत: इन लोगों के लिए अज्ञात बनी रहती है, अन्यथा सारी विचारधारा का अन्त हो जाता।.....'' (फ्रेडरिक एंगेल्स, 'लुडविग फायरबाख और क्लासिकीय जर्मन दर्शन का अंत', वही, खण्ड-3,भाग.2, पृष्ठ.258)

'' विचारधारा एक प्रक्रिया है जिसे, यह सही है कि, तथाकथित चिन्तक चेतन रूप से सम्पन्न करता है पर मिथ्या चेतना के साथ। उसे प्रेरित करने वाली असल प्रेरक शक्तियां उसे अज्ञात रहती हैं। अन्यथा यह विचारधारात्मक प्रक्रिया ही न होगी। इसलिए वह झूठी या प्रतीयमान प्रेरक शक्तियों की कल्पना कर लेता है। चूंकि यह चिन्तन की प्रक्रिया है इसलिए इसका रूप एवं विषय-वस्तु भी वह अपने या अपने पूर्ववर्तियों के विशुद्ध चिन्तन से प्राप्त करता है। वह केवल चिन्तन सामग्री को लेकर कार्य करता है, जिसे बिना जांच-परख के ही वह चिन्तन फल के रूप में स्वीकार कर लेता है, और चिन्तन से स्वतंत्र किसी अधिक दूरवर्ती स्रोत की छानबीन नहीं करता। वस्तुत: यही उसके लिए सहज साधारण मार्ग है, क्योंकि सभी कार्य में

चिन्तन की मध्यस्तता होने के कारण उसे वह अन्ततः चिन्तन पर आधारित ज्ञान होता है।''(फ्रांज मेहरिंग को एंगेल्स का पत्र, 14 जुलाई 1893, वही, पृष्ठ-414, जोर मूल में)

मार्क्सवाद के पैदा होने के साथ, द्वन्द्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद की खोज के बाद ''विचारधारा'' का, उपरोक्त अर्थ में विचारधारा का अन्त हो जाता है क्योंकि एंगेल्स के शब्दों में 'अब प्रश्न यह नहीं है कि हम अन्तः सम्बन्धों का अपने मस्तिष्क से आविष्कार करें, प्रश्न अब यह है कि उन्हें स्वयं तथ्यों के अन्दर ढूंढा जाय।'

जब एंगेल्स ने कहा था कि समाजवाद अब विज्ञान बन गया है तो उसका भी यही अर्थ था। मार्क्स-एंगेल्स से पहले समाजवाद श्रेष्ठ, प्रतिभावान मनुष्यों द्वारा अपने मस्तिष्क से खोजी गयी दोष रहित आदर्श समाज व्यवस्था थी। यह उनके मस्तिष्क की उपज थी और इसके लिए उन्होंने समाज से नहीं बल्कि पहले के चिन्तकों से प्रस्थान किया था। इन प्रतिभावान मनुष्यों ने पहले के चिन्तकों की गलतियों को पकड़ा, जिसके चलते उनकी समाज व्यवस्था आदर्श नहीं बन पायी थी और उसके बदले अपनी आदर्श व्यवस्था पेश की। यह सब शुद्ध चिन्तन, उर्वर मस्तिष्क का परिणाम था। अगर ये मनुष्य पहले पैदा हो गये होते तो मानवता बीच के काल के कष्टों से बच जाती।

मार्क्स-एंगेल्स ने समाजवाद को विज्ञान बनाया ठीक इसीलिए कि उन्होंने अपने उर्वर मष्तिष्क से आदर्श समाज व्यवस्था खोजने के बदले समाज का अध्ययन किया और बताया कि पूंजीवादी समाज में चलने वाले पूंजीपति और मजदूर के बीच के वर्ग-संघर्ष का अनिवार्य नतीजा पूंजीवादी व्यवस्था का खात्मा व समाजवाद का निर्माण होगा और इसे अंजाम देगा मजदूर वर्ग। इसलिए समाजवाद लाने के लिए आदर्श समाज की कल्पना करने की जरूरत नहीं है बल्कि जरूरत है समाज में चल रहे वर्ग संघर्ष के नियमों को समझने की और उसे क्रांति की ओर ले जाने की।

तब से मार्क्सवाद की तमाम मार्क्सवादियों से यही मांग रही है कि वे अपने मस्तिष्क के बदले, पहले से मौजूद चिन्तन सामग्री-सूत्रों-के बदले तथ्यों से प्रस्थान करें। सार रूप में, ''विचारधारा'' के बदले विज्ञान को अपनाएं। लेकिन जैसा कि खुद प्रकृति वैज्ञानिकों के साथ देखा गया है, वैज्ञानिक बनना इतना आसान नहीं होता। चूंकि इंसान चिन्तनशील प्राणी है इसलिए ''विचारधारा'' अपनाना उसके लिए ज्यादा आसान होता है।

मार्क्सवादी विचारधारा के – जो आज मार्क्सवाद, लेनिनवाद, माओ विचारधारा तक विकसित हो गया है – दो हिस्से हैं। इसका सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा है इसका दर्शन और, इसका विश्व दृष्टिकोण - द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद। यह प्रकृति और समाज पर लागू होने वाला आम सिद्धान्त है। बल्कि प्रकृति और समाज जिन आम नियमों से संचालित होते है, उसका समुच्चय ही द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है। यह मार्क्सवादी विज्ञान का कोर है।

प्रकृति और समाज पर लागू होने वाले इन आम नियमों को जब मानव इतिहास पर लागू किया जाता है, या जब मानव इतिहास को इस दृष्टिकोण से देखते हैं तो मानव इतिहास के जो आम नियम निकलते हैं उन्हें हम ऐतिहासिक भौतिकवाद के नाम से जानते हैं। ऐतिहासिक भौतिकवाद मार्क्सवादी विज्ञान का दूसरा सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा है।

द्वन्द्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद के अलावा भी कुछ आम प्रस्थापनाएं हैं जो मार्क्सवादी विचारधारा का हिस्सा बन गई हैं। ये प्रस्थापनाएं समाज के अध्ययन से निकाले गये वे निष्कर्ष हैं जो

कमोबेश सार्वभौमिक और सार्वजनीन हैं यानि संदर्भ-प्रसंग के साथ वे सब जगह लागू होते हैं मसलन, बेशी मूल्य का सिद्धान्त, सर्वहारा की तानाशाही, राज्य व्यवस्था का चरित्र, बुर्जुआ जनवाद का चरित्र, युद्ध और शांति इत्यादि।

उपरोक्त तीनों से मिलकर ही मार्क्सवादी विज्ञान का निर्माण होता है।

उपरोक्त से स्पष्ट है कि समाज विशेष में क्रांति के कार्यक्रम, रणनीति, रणकौशल इत्यादि मार्क्सवादी विज्ञान का हिस्सा नहीं बनते। वे तो समाज विशेष पर मार्क्सवादी विज्ञान को लागू कर निकाले गये वे निष्कर्ष होते हैं जो उन्हीं समाजों में और उसी समय विशेष पर लागू होते हैं। उनका महत्व तात्कालिक, अस्थाई होता है। मिलते-जुलते समाजों के लिए तो वे संदर्भ सामग्री की तरह कुछ महत्व के होते हैं लेकिन वे ऐसे नियम नहीं बनते जिनका सार्वभौमिक, सार्वजनीन महत्व हो। इस रूप में वे मार्क्सवादी विज्ञान का हिस्सा नहीं बनते।

हमारे समय की एक दु:खद सच्चाई यह है कि कम्युनिस्ट क्रांतिकारी खेमे के अधिकांश लोग मार्क्सवादी विचारधारा को विज्ञान की तरह नहीं लेते बल्कि वे इसे ''विचारधारा'' की तरह लेते हैं। जो इसे विज्ञान की तरह लेते भी हैं उनमें से अधिकांश का मतलब यह होता है कि इस पर शंका की जाय और उस पर सवाल खड़ा किया जाय। अर्थात् मार्क्सवाद को इस रूप में विज्ञान नहीं माना जाता कि तमाम सामाजिक परिघटनाओं के अध्ययन में तथ्यों से प्रस्थान किया जाय और निष्कर्ष निकाले जायें, इसके लिए द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी दृष्टिकोण अपनाया जाय। वे तो मार्क्सवाद की बुनियादी प्रस्थापनाओं पर शंका को ही विज्ञान मानते हैं भले ही शंका करने के लिए कोई नये तथ्य और तर्क मौजूद न हों।

कम्युनिस्ट क्रांतिकारी खेमे में ऐसे लोगों की संख्या ज्यादा है जो मार्क्सवाद को ''विचारधारा'' के रूप में लेते हैं। इन्हीं में से कुछ लोग कालांतर में इसे ''विज्ञान'' के रूप में लेने लगते हैं यानी उस पर शंका करने लगते हैं।

जैसा कि एंगेल्स ने कहा है ''विचारधारा'' एक प्रक्रिया है जिसे चिन्तक मिथ्या चेतना के साथ सम्पन्न करता है। यानी ऐसा चिन्तक मिथ्या चेतना का शिकार होता है। उसे प्रेरित करने वाली असल प्रेरक शक्तियां उसे अज्ञात रहती हैं। इस तरह की मिथ्या चेतना का शिकार मार्क्सवादी अपने को कम्युनिस्ट समझता है जबकि दरअसल वह किसी बुर्जुआ कार्यभार को अंजाम दे रहा होता है जिसका उसे खुद भी पता नहीं होता। यह परिघटना बहुत बड़े पैमाने पर तब घटित होती है जब क्रांति की मंजिल बुर्जुआ जनवादी हो और पूंजीपति-मजदूर के बीच का संघर्ष अभी पृष्ठभूमि में, दूसरे नंबर पर हों। तब जो कार्यभार होते हैं वे बुर्जुआ जनवादी होते हैं। ऐसे में व्यवहारिक स्तर पर बुर्जुआ दृष्टिकोण से ग्रस्त व्यक्ति और कम्युनिस्ट में बहुत ज्यादा फर्क नहीं होता। तब बहुत सारे ऐसे लोग अपने को कम्युनिस्ट समझ सकते हैं जो वास्तव में बुर्जुआ जनवादी होते हैं। ऐसे लोग मिथ्या चेतना के शिकार होते हैं। ये द्वंद्वात्मक भौतिकवाद को आत्मसात नहीं कर पाते, उसे सूत्र रूप में रट लेते हैं। वे मार्क्सवाद की अन्य बुनियादी प्रस्थापनाओं को भी सूत्र रूप में लेते हैं और उसका अपने हिसाब से अर्थ लगा लेते हैं। ऐसा करते समय उन्हें खुद भी पता नहीं होता कि वे क्या कर रहे हैं। मिथ्या चेतना से प्रस्थान करने के कारण वे अपने-आप को कम्युनिस्ट ही समझ रहे होते हैं। लेकिन जैसे ही क्रांति के बुर्जुआ जनवादी कार्यभार पूरे हो जाते हैं, इनका असली चरित्र सामने आ

जाता है। वे आगे जाने से इंकार कर देते हैं और अंततः अपने को बुर्जुआ जनवादी साबित कर देते हैं।

चीन में यह तीखे ढंग से देखने में आया। नव-जनवादी क्रांति के बाद जब वहां समाजवाद के निर्माण का समय आया तो नीचे से ऊपर तक हजारों लोग निकल आये जो आगे नहीं जाना चाहते थे। इनके नेता पेंग ती हुयी, ल्यू शाओ ची और डेंग स्याओ पिंग थे। नव-जनवादी क्रांति होने तक वे खालिस कम्युनिस्ट समझे जाते थे। ल्यू शाओ ची ने तो एक किताब भी लिखी थी- 'अच्छे कम्युनिस्ट कैसे बनें'। लेकिन नव-जनवादी क्रांति पूरी होने के बाद पता चला कि वे बुर्जुआ जनवादी थे। वे अपने बारे में मिथ्या चेतना के शिकार थे। उन्होंने मार्क्सवाद को ''विचारधारा'' के रूप में ग्रहण किया था।

गैर सर्वहारा वर्गों से आने वाले लोगों के साथ इस बात की सम्भावना ज्यादा होती है कि वे मार्क्सवाद को ''विचारधारा'' के रूप में लें यानी मिथ्या चेतना से प्रस्थान करें। वे पूंजीवादी व्यवस्था से पैदा हुए संकट के शिकार होते हैं। और इस संकट से मुक्ति के लिए मार्क्सवाद को, कम्युनिज्म को स्वीकार करते हैं। कम्युनिज्म को स्वीकार कर उन्हें लगता है कि उन्होंने खुद को सर्वहारा की मुक्ति के लिए समर्पित कर दिया है जबकि दरअसल वे इसमें अपनी व्यक्तिगत मुक्ति तलाश रहे होते हैं। 'उनको प्रेरित करने वाली शक्तियां उन्हें अज्ञात रहती हैं।' वे मार्क्सवाद को सूत्र रूप में ग्रहण करते हैं और सर्वहारा आंदोलन के लिए अनेकानेक मुसीबतें खड़ी करते है। माओ ने यूं ही नहीं कह दिया था कि मध्यम वर्ग से आने वाला कोई व्यक्ति दस साल तक तीखे वर्ग संघर्ष में तप कर ही सही मायने में सर्वहारा दृष्टिकोण ग्रहण कर पाता है।

जैसा कि हम पहले ही कह आये हैं, हमारे देश में भी ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो मार्क्सवाद को ''विचारधारा'' के रूप में लेते हैं। नव-जनवादी क्रांति की मंजिल की बात करने वालों ने इसे खुले आम घोषित कर रखा है। उन्होंने खुले आम घोषित कर रखा है कि नव-जनवादी क्रांति की माओ की अवधारणा मार्क्सवादी विचारधारा, मार्क्सवाद विज्ञान का हिस्सा है। मजे की बात यह है कि खुद माओ ने ऐसी कोई बात नहीं कही थी। उन्होंने तो चीन की नव-जनवादी क्रांति को महज संदर्भ सामग्री के रूप में लेने की सलाह दी थी। ये लोग 'ठोस परिस्थितियों का ठोस विश्लेषण' की बात कर-कर के आपका जी उबा देते हैं लेकिन वे जो कुछ पेश करते हैं वह तथ्यों से निष्कर्ष नहीं बल्कि निष्कर्षों से तथ्य होते हैं। चीन की नव-जनवादी क्रांति के सूत्र इन्हें कण्ठस्थ हैं और कण्ठस्थ है चीनी समाज का माओ का विश्लेषण भी। ये बस इतना करते हैं कि नाम, तिथि और आंकड़े बदल कर पेश कर देते हैं और कहते हैं कि 'यह ठोस परिस्थितियों का ठोस विश्लेषण' है। यदि ये क्रांतिकारी न होते तो इनके 'ठोस विश्लेषण' की ओर कोई झांकता भी नहीं। वैसे तो वे आज भी महज कार्यकर्ताओ को संतुष्ट करने का ही काम करते हैं कि चीनी क्रांति के सूत्र भारत पर भी लागू होते हैं। मार्क्सवादी विचारधारा पर ये लोग दृढ़तापूर्वक खड़े हैं, लेकिन विज्ञान के रूप में नहीं बल्कि ''विचारधारा'' के रूप में।

III

मार्क्सवादी विचारधारा में विकास

''मार्क्सवाद-लेनिनवाद एक विज्ञान है और विज्ञान बहस से नहीं कतराता। कोई भी चीज जो बहस से कतराती है वह विज्ञान नहीं है। अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन में चल रही वर्तमान महान बहस सारे देश में मौजूद कम्युनिस्टों, क्रांतिवादियों और क्रांतिकारी जनता को प्रेरित कर रही है कि वे अपनी बुद्धि पर जोर डालकर मार्क्सवाद-लेनिनवाद के बुनियादी सिद्धान्तों के अनुसार विश्व क्रांति और अपने देश की क्रांति से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार करें। इस महान बहस के जरिये लोग सही व गलत में और सच्चे व छद्म मार्क्सवाद-लेनिनवाद में अन्तर कर सकेंगे। इस महान बहस के जरिये विश्व की तमाम क्रांतिकारी ताकतें गोलबंद हो जायेंगी, सभी मार्क्सवादी-लेनिनवादी विचारधारात्मक और राजनीतिक रूप से परिपक्व हो जायेंगे और मार्क्सवाद-लेनिनवाद को और ज्यादा परिपक्व तरीके से अपने देशों के ठोस व्यवहार से जोड़ सकेंगे। इस प्रकार मार्क्सवाद-लेनिनवाद निस्संदेह समृद्ध होगा, विकसित होगा और नयी उंचाइयों को छुएगा।'' ('महान बहस', सातवीं टिप्पणी, अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशन, 1998, पृष्ठ-274)

आज ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो मार्क्सवाद को अधूरा या आंशिक तौर पर गलत समझते हैं। वे मार्क्सवाद को ठीक करना चाहते है, उसे पूर्ण बनाना चाहते हैं। ऐसे लोगों की भी कमी नहीं है जो मार्क्सवाद को विकसित कर नयी ऊंचाइयों पर ले जाना चाहते हैं। वे उसे मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ विचारधारा (या माओवाद) से ऊपर उठाना चाहते है। ऐसे लोगों की तो भरमार ही है जो स्टालिन और माओ में खोट निकालते हैं। कुछ तो लेनिन में भी खोट निकाल रहे हैं। घ्यान रहे कि हम कम्युनिस्ट क्रांतिकारी शिविर की बात कर रहे हैं, उससे बाहर के लोगों की या मार्क्सवादी बुद्धिजीवियों की नहीं।

ये लोग किस नतीजे पर पहुंचेंगे इसे जानने के लिए आइये देखें कि मार्क्सवाद में उत्तरोत्तर विकास कैसे हुआ है।

मार्क्सवाद का जन्म 1848-50 की यूरोपीय क्रांतियों के साथ, उनकी पूर्वपीठिका के तौर पर हुआ। कम्युनिस्ट घोषणा पत्र छप रहा था कि फ्रांस में क्रांति शुरू हो गई। यानी एक महाद्वीपीय क्रांति मार्क्सवाद के पैदा होने की पृष्ठभूमि में उमड़-घुमड़ रही थी, ऐसी क्रांति जिसमें मार्क्सवाद के संस्थापकों, मार्क्स-एंगेल्स ने प्रत्यक्षत: भाग लिया।

जहां तक वैचारिक पृष्ठभूमि का सवाल है तो मार्क्सवाद जर्मन दर्शन, ब्रिटिश राजनीतिक अर्थशास्त्र और फ्रांसीसी समाजवाद का सीधा उत्तराधिकारी था। इन तीनों क्षेत्रों में आधी शताब्दी से जो बहस चल रही थी मार्क्सवाद ने उसका समाहार प्रस्तुत किया। निषेध का निषेध कर वे इन्हें नई ऊँचाइयों पर ले गये। मार्क्स और एंगेल्स महान प्रतिभावान, जीनियस थे लेकिन उपरोक्त तीनों

वैचारिक संघर्षो, 1830-40 के दशक में इंग्लैण्ड व फ्रांस में पूंजीपति और मजदूर वर्ग के बीच वर्ग संघर्ष के विकास तथा 1848-50 की क्रांति की पृष्ठभूमि के बिना उनकी प्रतिभा फलदायी न होती, मार्क्सवाद का जन्म न होता।

मार्क्स-एंगेल्स ने पूंजीवादी समाज का अध्ययन किया तथा पूंजीवादी दुनिया में क्रांति की रणनीति और रणकौशल प्रस्तुत किये। लेकिन उनके समय में क्रांतियां सफल नहीं हो पायीं और इतिहास ने बाद में साबित किया कि यह क्रांतियों का नहीं, बल्कि क्रांति की तैयारी का दौर था। यह पूंजीवाद के शांतिपूर्ण विकास का दौर था (हालांकि पूंजीवाद का कोई भी दौर उथल-पुथल से मुक्त नहीं होता)। इस बीच पूंजीवाद एक नये चरण – साम्राज्यवाद में प्रवेश कर गया। यह पूंजीवाद की उच्चतम अवस्था थी। साम्राज्यवाद के साथ युद्धों और क्रांतियों का युग शुरू हो गया। साम्राज्यवाद के साथ मार्क्सवाद ने भी अपने अगले चरण में, मार्क्सवाद-लेनिनवाद में प्रवेश किया।

लेनिनवाद दूसरे इंटरनेशनल के वैचारिक उत्तराधिकारी के तौर पर पैदा हुआ जिसकी पृष्ठभूमि में था प्रथम विश्वयुद्ध और रूस की क्रांति। लेनिन द्वितीय इंटरनेशनल के दौरान शिक्षित-दीक्षित हुए थे, उन्होंने काउत्स्की और प्लेखानोव से काफी कुछ सीखा था और फिर उन्होंने उनके साथ सीधे संघर्ष में उतरकर निषेध का निषेध करते हुए लेनिनवाद को जन्म दिया। इस बीच दुनिया के पैमाने पर अभूतपूर्व ढंग से तीखा हो उठा वर्ग-संघर्ष और रूस की क्रांति इस सारे वैचारिक संघर्ष के भौतिक आधार थे। लेनिन भी जीनियस थे लेकिन दूसरे इंटरनेशनल की वैचारिक विरासत, प्रथम साम्राज्यवादी युद्ध और रूस की क्रांति के बिना लेनिनवाद का जन्म नहीं होता। महान व्यक्ति जितना अपने समय को गति देते हैं, उससे कई गुना ज्यादा वे अपने समय की पैदाइश होते हैं। वे विशाल समुद्र की लहरों पर सवारी करते है, उन लहरों पर जिनको जन्म देने वाली शक्तियां कोई और होती हैं। यहां इतना ही इंगित कर देना पर्याप्त होगा कि साम्राज्यवाद को विश्लेषित और सूत्रित करने का काम लेनिन उसके पैदा होने के कोई डेढ़ दशक बाद कर पाये जाये जब प्रथम विश्व युद्ध ने इसके सारे अंतरविरोधों को खोलकर सामने रख दिया।

लेनिन ने साम्राज्यवाद को विश्लेषित करते हुए उसके नियमों को उद्घाटित किया तथा कमजोर कड़ी की अवधारणा प्रस्तुत की। साथ ही उन्होंने पिछड़े पूंजीवादी देशों तथा औपनिवेशक व अर्ध-औपनिवेशिक देशों में क्रांति की रणनीति और रणकौशल प्रस्तावित किये। इस तरह उन्होंने क्रांति का विकसित पूंजीवादी देशों से पिछड़े पूंजीवादी देशों और औपनिवेशिक देशों तक यानी समूची दुनिया तक विस्तार किया। अब क्रांति की जद में समूची दुनिया आ गई। मार्क्सवाद में अगला विकास माओ विचारधारा के रूप में हुआ। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद समाजवादी खेमे का उदय, इनमें से ज्यादातर में संशोधनवादियों के नेतृत्व में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना, इन संशोधनवादियों से, खासकर ख्रुश्चेव संशोधनवादियों से वैचारिक संघर्ष और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति इसकी पृष्ठभूमि में थे।

माओ तीसरे इंटरनेशनल की परम्परा में दीक्षित हुये थे, इसके सकारात्मक पहलुओं को उन्होंने आत्मसात किया था, चीन की नव जनवादी क्रांति सम्पन्न की थी। इसके बाद चीन में समाजवाद का निर्माण और समाजवाद को आगे बढ़ाना चुनौती के रूप में प्रस्तुत हुआ। इसी समय ख्रुश्चेव संशोधनवादियों ने मार्क्सवाद पर हमला बोल दिया। माओ ने इनके खिलाफ संघर्ष कर मार्क्सवाद की रक्षा की तथा महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति की अवधारणा प्रस्तुत की।

स्पष्ट है कि रूस की क्रांति के विपर्यय और चीनी समाजवादी समाज में चलने वाले तीखे वर्ग संघर्ष के बिना महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति की अवधारणा नहीं पैदा हो सकती थी।

मार्क्सवाद के विकास के इतिहास का उपरोक्त अवलोकन क्या सबक प्रस्तुत करता है? इसका सबसे बड़ा सबक यह है कि मार्क्सवाद में विकास किसी की इच्छा मात्र से नहीं हो जायेगा। मार्क्सवाद का विकास भी एक वस्तुगत परिघटना है और यह खुद मार्क्सवादियों की इच्छा से स्वतंत्र है। अनेक भौतिक और वैचारिक कारक मिलकर इस विकास को अंजाम देते हैं। कोई अपनी इच्छा मात्र से लेनिन या माओ नहीं बन सकता। जो लोग अपने ही नाम के साथ विचारधारा या पथ शब्द जोड़ रहे है, इतिहास उनके साथ बहुत क्रूर मजाक करेगा।

मार्क्सवाद का प्रत्येक अगले चरण का विकास समाज विकास के, वर्ग संघर्ष के, सामाजिक प्रयोग के अगले चरण के साथ जुड़ा हुआ है। जब पूंजीवाद यूरोप के केवल कुछ देशों तक सीमित था और अभी अपेक्षाकृत कम विकसित था, स्वतंत्र प्रतियोगिता वाले अपने पहले चरण में था तो मार्क्स-एंगेल्स के रूप में मार्क्सवाद पैदा हुआ। जब यह पूंजीवाद और ज्यादा विस्तृत हो गया, साम्राज्यवाद के अपने अगले चरण में पहुंच गया, जब वर्ग संघर्ष समूची दुनिया के पैमाने तक विस्तारित हो गया (साम्राज्यवाद के कारण) तो लेनिन के रूप में लेनिनवाद पैदा हो गया। जब क्रांतियों के बाद समाजवादी समाज कायम हो गये तथा उनमें वर्ग संघर्ष एक सर्वथा नये स्तर पर पहुंच गया तो महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति के रूप में माओ विचाराधारा पैदा हुई। निश्चय ही, पुराने प्रयोगों की असफलता भी इनकी प्रेरक शक्तियों में थी। काल्पनिक समाजवाद के प्रयोगों की असफलता, दूसरे इंटरनेशनल का पतन तथा सोवियत खेमें में पूंजीवादी पुनर्स्थापना क्रमशः मार्क्सवाद, लेनिनवाद और माओ विचारधारा के प्रेरक तत्व थे। पुरानों के निषेध से ही नये पैदा हुए थे।

इससे स्पष्ट है कि मार्क्सवाद में अगले चरण का विकास सामाजिक प्रयोग के अगले चरण से ही सम्बद्ध होगा। यह अगला चरण किसी बड़े विकसित साम्राज्यवादी देश में क्रांति या फिर वैश्विक क्रांति ही हो सकता है। इससे नीचे के प्रयोग पहले ही हो चुके हैं। और जब इस तरह का उन्नत स्तर का प्रयोग होगा, या उसकी पूर्व पीठिका तैयार होगी तब हमारी पहले की क्रांतियों की तथा उनके सिद्धान्तों की सीमाएं स्वतः स्पष्ट हो जायेंगी। तब आज की तरह क्रांतियों में खोट निकालने की या मगजमारी करने की जरूरत नहीं पड़ेगी। तब पहले की क्रांतियों की समस्याएं सही रूप में प्रस्तुत हो जायेंगी और उनका सही समाधान भी निकल आयेगा - हालांकि तब तक वक्त गुजर चुका होगा। महान फ्रांसीसी क्रांति के 'आतंक के राज्य' में क्या हो रहा था यह आज हम स्पष्ट जानते हैं, लेकिन तब यह सम्भव नहीं था। तब तो वह महज व्यक्तिगत प्रतिद्वन्द्विता, मारामारी और गद्दारी ही दीखता था।

इससे साफ निष्कर्ष निकलता है कि आज हम मार्क्सवाद का विकास करने की अपनी मनोगत इच्छा के वशीभूत होकर मार्क्सवाद में खोट निकालने की या पहले की क्रांतियों में खोट निकालने की कार्यवाही बंद कर दें। यदि हम ऐसा करते हैं, (खोट निकालने का काम) तो यह कुछ ऐसे ही होगा जैसे हाई स्कूल का कोई छात्र, जिसने अभी-अभी विज्ञान के आधुनिक सिद्धान्तों का परिचय हासिल किया है, इन आधुनिक सिद्धान्तों में खोट निकालकर इनमें विकास करने की सोचने लगे। उसकी इस हरकत पर केवल मुस्कराया ही जा सकता है।

यह बिल्कुल साफ है कि समाजवाद के इतिहास का सही मायने में सार संकलन ऐसी पार्टियां ही सामूहिक रूप से कर सकती हैं, जो परिपक्व हों, अपने देश में वर्ग संघर्ष को ऊंचे स्तर पर संचालित कर रही हो तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एक परिपक्व मंच पर एकताबद्ध हों। इनमें साम्राज्यवादी देशों की पार्टियां होना निहायत जरूरी हैं। इस तरह से देखा जाय तो सही मायने में गठित चौथा इंटरनेशनल ही इस काम को अंजाम दे सकता है। तब उस समय की कोई प्रतिभा अपना कमाल दिखा सकती है।

जब तक ऐसा नहीं हो जाता तब तक उचित यही होगा कि मार्क्सवाद की बुनियादी प्रस्थापनाओं को सही मानकर दृढ़ता से उस पर खड़ा रहा जाय तथा समाजवादी प्रयोगों के माओ के सार-संकलन को अपनाया जाय।

लेकिन कुछ लोगों को इससे चैन नहीं पड़ेगा। वे इतिहास में अपना नाम लिखाने को आतुर हैं। वे इंतजार नहीं कर सकते कि इतिहास उन्हें लेनिन-माओ घोषित करे। वे खुद अपने अपने को लेनिन-माओ घोषित कर देते हैं या अपने चेलों से करवा देते हैं।

ऐसे लोग अपने तर्क में प्रकृति विज्ञान का उदाहरण देते हैं। वे कहते हैं कि प्रकृति विज्ञान में मात्रात्मक विकास होता रहता है और तब किसी प्रतिभा के द्वारा यह छलांग लगाकर ऊंचे स्तर पर पहुंच जाता है। एक अकेला आंइस्टीन विज्ञान को नये स्तर पर पहुंचा देता है। अकेले वैज्ञानिक की वैज्ञानिक अन्वेषण क्षमता और लगन ही इसके लिए पर्याप्त होती है। मोती बिखरे पड़े हैं, बस खोजने की देर है।

प्रकृति विज्ञान का यह उदाहरण गलत है। प्रकृति विज्ञान का समूचा इतिहास, खासकर पिछले पांच सौ सालों का इतिहास यह बताता है कि किसी बिल्कुल नये सिद्धान्त के पैदा होने के लिए पुराने सिद्धान्तों का उनकी चरम सीमा तक विकास हो जाना आवश्यक होता है। इसी तरह वैज्ञानिक प्रयोगों और तकनीक का भी नये स्तर पर पहुंच जाना आवश्यक होता है। केवल जब तकनीक व वैज्ञानिक प्रयोग पुराने वैज्ञानिक सिद्धांतों को एकदम असंतोषजनक साबित कर देते हैं तभी नये सिद्धान्त पैदा होते हैं। बल्कि अक्सर होता यह है कि नये तथ्यों और आंकड़ों को बकवास की हद तक पुराने सिद्धान्तों में फिट करने की कोशिश की जाती है या पुराने सिद्धांतों को इनके अनुरूप तोड़ा-मरोड़ा जाता है। जब यह सारी कवायद हद से ज्यादा हो जाती है तो नया सिद्धान्त स्वत: प्रकट हो जाता है। तब नया सिद्धान्त इतना स्वाभाविक लगता है कि हर कोई कह उठता है कि अरे, हमने पहले यह क्यों नहीं सोचा। सच्चाई यह है कि वक्त से पहले कोई कितना भी जोर लगाकर नये सिद्धान्त के बारे में नहीं सोच सकता था।

आधुनिक प्रकृति विज्ञान को और वैज्ञानिकों को यह सुविधा हासिल रही है कि उसके विकास का क्रम कभी भंग नहीं हुआ। यहां तक कि प्रथम व द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान भी यह भंग नहीं हुआ। ऐसा कभी नहीं हुआ कि उसकी सारी प्रयोगशालायें और तकनीक नष्ट हो गई हो और उन्हें दुबारा खड़ा करने के लिए उसके पास संसाधन न हो तथा उसे निम्न स्तर की प्रयोगशालाओं से काम चलाना पड़े। यदि कभी ऐसा हुआ तो निश्चित तौर पर विज्ञान का विकास रुक जायेगा। जब तक दुबारा उसी स्तर की प्रयोगशालायें नहीं खड़ी हो जायेंगी तब तक यह विकास रुका रहेगा। केवल पुराने आंकड़ों और मानव मस्तिष्क से नये सिद्धांतों की खोज नहीं हो सकती। अत्यंत विशाल स्तर की आज की प्रयोगशालाएं इसे प्रमाणित करती हैं। केवल उनके दम पर ही विज्ञान का आगे

विकास हो रहा है। यह बात कहने की जरूरत नहीं कि आज छोटे से छोटे वैज्ञानिक विकास को सारी दुनिया के वैज्ञानिक मिलकर अंजाम दे रहे हैं। अपने छोटे से केबिन में बैठा हुआ वैज्ञानिक अलग-अलग दीखता है पर वह सारी दुनिया की उन्नत प्रयोगशालाओं तथा सारे वैज्ञानिकों से जुड़ा हुआ है। जो ऐसा नहीं है वह कुछ हासिल नहीं कर सकता। भारत के वैज्ञानिक इसीलिए यहां रहते हुये कुछ नहीं कर पाते और विकसित साम्राज्यवादी देशों में जाते ही वहां चमत्कार दिखाने लगते हैं।

मार्क्सवाद इस मायने में प्रकृति विज्ञान से पूर्णतः भिन्न है कि इसकी प्रयोगशालायें हमारी इच्छा मात्र से नहीं खड़ी की जा सकती। इसकी प्रयोगशाला पूरा समाज है। प्रकृति विज्ञान और समाज में निरंतर चलने वाला उत्पादन तथा वर्ग संघर्ष इसकी प्रयोगशाला का एक हिस्सा भर हैं। इसका ज्यादा बड़ा और अहम हिस्सा, जहां सारे नियम अपने को तीखे ढंग से उद्घाटित करते हैं, उच्च स्तर का वर्ग संघर्ष और क्रांतियां हैं। और क्रांतियां रोज-रोज नहीं होतीं।

क्रांतियां रोज-रोज नहीं होतीं। क्रांतियों का इतिहास दिखाता है कि कुछ समय के क्रांतिकारी उथल-पुथल के बाद लम्बे समय का 'शांति' काल आता है, क्रांतियों की तैयारी का काल आता है। इस तरह इतिहास समगति में नहीं, झटकों में आगे बढ़ता है।

आज हम ऐसे ही समय में रह रहे हैं। पिछले क्रांतिकारी दौर को बीते तीस साल के आस-पास हो चुके हैं। चीन में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना को भी लगभग तीस साल हो चुके हैं। चीन की महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति तक का सार-संकलन माओ कर गये हैं। उसके आगे का सार-संकलन आज के गैर क्रांतिकारी समय में, छोटे-छोटे क्रांतिकारी ग्रुपों द्वारा सम्भव नहीं है। इसके लिए उनके पास न तो वैचारिक परिपक्वता है और न ही ऊंचे स्तर के वर्ग संघर्ष का अनुभव। चूंकि सिद्धान्त के ऊंचे स्तर के विकास की पूर्वशर्तें ही यहां पूरी नहीं होतीं, इसीलिए यह विकास भी नहीं हो सकता। इस तरह का ख्वाब पालना ही अपने आप में शेखचिल्लीपन है।

ऐसे में जो चीज हो सकती है वह केवल यही कि मौजूदा सिद्धांतों को स्वीकार कर अपने यहां मजबूत कम्युनिस्ट पार्टियों का निर्माण किया जाय और वर्ग संघर्ष को विकसित करने का प्रयास किया जाय। इसके लिए वर्तमान मार्क्सवाद पर्याप्त है।

IV

मार्क्सवाद से विचलन के सांगठनिक, वैचारिक, सामाजिक कारण

आज तो इतने सारे लोग मार्क्सवाद से विचलन कर रहे हैं, उसमें खोट निकाल रहे हैं या उसका 'विकास' करने का प्रयास कर रहे हैं तो इसके निश्चित कारण हैं।

इसका सांगठनिक कारण कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन का छोटे-छोटे ग्रुपों में विभक्त होना है। इस सांगठनिक बिखराव के कारण इनके पास वैचारिक परिपक्वता और व्यावहारिक अनुभव का अभाव होता है। एक एकीकृत कम्युनिस्ट पार्टी में जो लोग निचले स्तर के कार्यकर्ता होते वे यहां नेता बन जाते हैं। यह प्रक्रिया फूट दर फूट चलती रहती है। आज जबकि अंतर्राष्ट्रीय स्तर का नेतृत्व नहीं है तथा हर जगह यही स्थिति हो तब परिस्थिति और ज्यादा विषम हो जाती हैं। नेताओं का प्रशिक्षण हो नहीं पाता और जब तक संगठन कुछ अनुभव हासिल करते हैं तब तक फूट स्थिति को फिर वहीं ले आती है।

अपरिपक्व और अनुभवहीन नेतृत्व के लिए यह संभव ही नहीं होता कि स्थितियों का, परिघटनाओं का सही विश्लेषण किया जा सके। वे हाथी के पांव, सूंड़, कान इत्यादि ही देख सकते हैं, सम्पूर्ण हाथी नहीं। और उस स्थिति की कल्पना ही की जा सकती है जब कोई हाथी के कान को ही सम्पूर्ण हाथी समझ ले।

वैचारिक अपरिपक्वता और सीमित अनुभव के चलते बहुत जल्दी ही मार्क्सवाद से विचलन आरम्भ हो जाता है। नेतृत्व अंश को ही सम्पूर्ण मानने लगता है तथा इसका मार्क्सवाद की पुरानी प्रस्थापनाओं से मेल न होने पर तुरंत वो पुरानी प्रस्थापनाओं में परिवर्तन करने चल देता है।

इसका एक पहलू और है। आज क्रांति की परिस्थितियां परिपक्व नहीं हैं। पूंजीपति वर्ग हावी है। चारों ओर निराशा-पस्तहिम्मती का आलम है। ऐसे में क्रांति कार्य में प्रगति अत्यन्त धीमी है। छोटे-छोटे संगठन होने के चलते यह रफ्तार और धीमी हो जाती है। संगठनों के पास योजनायें तो होती हैं लेकिन उसे लागू करने के लिए संसाधन नहीं। ऐसे में इन संगठनों के नेतओं का धैर्य बहुत जल्दी चुक जाता है। कुछ दिन क्रांति की तैयारी करने के बाद इनको लगने लगता है कि सिद्धान्तों में ही कुछ खोट है अन्यथा क्रांति हो जाती। और वे सिद्धान्तों को ठीक करने चल पड़ते हैं। अपेक्षाकृत बड़े संगठनों को कुछ हासिल करते रहने का भ्रम बना रहता है इसीलिए उनके यहां विचलन की प्रक्रिया कुछ देर से शुरू होती है।

एक बार सिद्धान्तों पर सवाल खड़ा कर लेने के बाद विचलन की प्रक्रिया रूकती नहीं बल्कि बढ़ती चली जाती है। इसका कारण भी संगठनों का छोटा होना है। अक्सर ही छोटे-छोटे संगठन एक या दो नेताओं के इर्द-गिर्द गठित होते हैं। बाकी सारे कार्यकर्ता होते हैं। ऐसे में ये नेता अंकुशहीन होते हैं। इसलिए जब वे सिद्धान्तों से विचलित होना शुरू करते हैं तो उन्हें रोकने-टोकने वाला कोई नहीं होता। वे तेजी से फिसलनभरी राह पर चल निकलते हैं और इसके पहले कि पता चले वे मार्क्सवाद के दायरे से बाहर हो जाते हैं। इस मामले में भी अपेक्षाकृत बड़े संगठनों में थोड़ा फर्क होता है। वहां थोड़ा-बहुत अंकुश होता है इसीलिए मार्क्सवाद में नवीन आविष्कारों की प्रक्रिया वहां उतनी मुखर और स्पष्ट नहीं होती। मार्क्सवाद से विचलन वहां एक दायरे में बंधा होता है। नायाब सिद्धांत वहां जल्दी नहीं आते हालांकि समूचा संगठन सालों से अवसरवादी हो चुका होता है। भाकपा (माले) लिबरेशन के मामले में इसे देखा जा सकता है। यहां यह नियम काम करता हैं; मार्क्सवाद से विचलन करने वाले नवीन सिद्धान्तों का आविष्कार संगठन के आकार के व्युत्क्रमानुपात में होता हैं, जितना छोटा संगठन, उतने ही नवीन सिद्धान्त।

मार्क्सवाद के बुनियादी सिद्धांतों से विचलन का वैचारिक कारण वैचारिक अपरिपक्वता और पूंजीपति वर्ग का वैचारिक हमला है। जैसा कि पहले कहा गया है लेनिन का वैचारिक प्रशिक्षण दूसरे

इंटरनेशनल में हुआ था। यह किस स्तर का रहा होगा इसे जानने के लिए तब की प्लेखानोव और काउत्स्की की रचनाओं तथा जर्मन पार्टी के सैद्धान्तिक मुखपत्रों को पढ़ लेना पर्याप्त होगा। इस वैचारिक प्रशिक्षण से गुजर कर ही लेनिन इस लायक बने कि वे रूसी क्रांति की समस्याओं को हल कर सकें और खुद दूसरे इंटरनेशनल के पतन के खिलाफ लड़ सके। इसी तरह माओ का प्रशिक्षण तीसरे इंटरनेशनल के दौरान हुआ था। तीसरे इंटरनेशनल के माध्यम से लेनिन और स्टालिन सीधे माओ के शिक्षक थे। यह प्रशिक्षण किस स्तर का रहा होगा इसका अंदाज उन दस्तावेजों से लगाया जा सकता है जो भारत के कम्युनिस्टों ने मेरठ षडयंत्र केस में अपनी ओर से पेश किये थे, उन कम्युनिस्टों ने जिनके वैचारिक अधकचरेपन की इतनी बात की जाती है।

आज इस तरह के किसी भी वैचारिक प्रशिक्षण का अभाव है। अंतर्राष्ट्रीय पैमाने पर तो क्या राष्ट्रीय पैमाने पर भी किसी जीवन्त राजनीतिक-सैद्धान्तिक बहस का अभाव है। कार्यकर्ताओं का जो भी वैचारिक प्रशिक्षण हो रहा है वह मार्क्सवादी

शास्त्रीय ग्रन्थों द्वारा या बेहद उबाऊ, जड़ सूत्रवादी पार्टी पत्रिकाओं द्वारा। यह देखते हुए कि वर्ग संघर्ष का स्तर कितना नीचा है, इस तरह के प्रशिक्षण का क्या मतलब होगा, इसे समझना मुश्किल नहीं है।

दूसरी ओर पूंजीपति वर्ग द्वारा मार्क्सवाद पर निरंतर वैचारिक हमला जारी है। यह सूक्ष्म और भौड़े दोनों रूपों में जारी है। कम्युनिस्ट कार्यकर्ताओं पर इस हमले का प्रभाव पड़ना लाजिमी है। किसी उपयुक्त प्रत्युत्तर के अभाव में ये सचेत नहीं तो अचेत चिन्तन का हिस्सा बन ही जाते हैं जो समय आने पर अपना रंग दिखाते हैं। यदि कार्यकर्ता इन प्रभावों से धार्मिक लोगों की तरह अपने को बचाते हैं तो यह और बुरा होता है क्योंकि यह उनकी विवेचन की क्षमता को कुन्द करता है।

मार्क्सवाद से विचलन का सामाजिक कारण दो रूपों में कार्य करता है। पहला, क्रांति की वर्तमान स्थिति, दूसरा पेटी बुर्जुआ प्रभाव ।

जैसा कि पहले कहा गया है, आज निराशा-पस्तहिम्मती का दौर है। अंतर्राष्ट्रीय पैमाने पर पूंजीपति वर्ग हावी है। प्रतिक्रियावाद का बोलबाला है। उम्मीद की कोई किरण ऊपरी तौर पर दिखाई नहीं देती। ऐसे गैर क्रांतिकारी समय में सुधारवाद, संशोधनवाद का हावी हो जाना लाजिमी है। जब समय गैर क्रांतिकारी हो तो सुधारवाद मूल प्रवृत्ति बन जाता है और यह क्रांतिकारी संगठनों में भी अवसरवाद- संशोधनवाद को जन्म देता है। मार्क्सवाद की क्रांतिकारी विचारधारा से हजारों तरीके का विचलन आम बात बन जाती है। आज यही हो रहा है।

इस सबका सामाजिक आधार है देश का पेटी बुर्जुआ वातावरण और खुद मजदूर वर्ग के भीतर एक अभिजात तबके की उपस्थिति। आज पूंजीवाद का विकास वहां पहुंच रहा है जहां देश की कामगार आबादी में मजदूर वर्ग बहुमत में आ गया है। लेकिन तब भी देहातों से लेकर शहरों तक भारी मात्रा में पेटी बुर्जुआ वर्ग मौजूद है। देश के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी संगठनों का ज्यादातर आधार इसी पेटी बुर्जुआ वर्ग, खासकर देहाती पेटी बुर्जुआ वर्ग में है। दूसरी ओर मजदूर आंदोलन में अभी तक जो तबका नेतृत्व में था वह सुविधाप्राप्त ऊपरी तबका था। वह अपनी सुविधाप्राप्त स्थिति के कारण ही स्वभावतया सुधारवादी था। उसके इस सुधारवाद की कीमत उसके समेत आज समूचा मजदूर वर्ग चुका रहा है।

कहने की जरूरत नहीं कि आज मार्क्सवाद से जो भांति-भांति के विचलन हो रहे हैं, उसे रोका जाय। इस रोकने के लिए तीखा वैचारिक संघर्ष किया जाय। मार्क्सवाद में नवीन आविष्कारों की धज्जियां उड़ाई जाय और अपने आप को खुलेआम ''रूढ़िवादी'' मार्क्सवादी घोषित किया जाय। लेकिन यह काम प्रभावी ढंग से तभी हो सकता है जब देश में अखिल भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी बनाने और वर्ग संघर्ष विकसित करने के काम को आगे बढ़ाया जाय।

? ? ?